भारतीय शास्त्रीय संगीत में स्वर का कैशिक रूप

DR.GIAN CHAND
Associate Professor, Dept. of Music, Govt. College Sanjouli, Shimla, Himachal Pradesh

सार संक्षेपिका

अध्ययन के क्षेत्र में कुछ शब्द ऐसे होते है, जिनका स्थान उस विषय विशेष के लिए विशिष्ट होता है। 'कैशिक' भी एक ऐसा ही शब्द है जिसका प्रयोग संगीत के क्षेत्र में प्राचीन काल से ही किया जाता रहा है। इस शब्द का प्रयोग राग विशेष के अतिरिक्त अन्य विधाओं में भी किया गया है–जैसे स्वर में, जाति के रूप में तथा अभिनय की वृति के रूप में। कैशिक शब्द का प्रयोग संगीत के क्षेत्र में रागविशेष के अतिरिक्त अन्य विधाओं, जैसे अभिनय की वृति में, स्वर (स्वर साधारण) में तथा जाति गायन शैली में भी व्यापक रूप से हुआ है। कैशिक का शाब्दिक अर्थ 'केशवत्' अर्थात केश की तरह सूक्ष्म है। अभिनय की चारों वृतियों (भारती, सात्वती, आरभटी और कैशिकी) में कैशिकी वृति ही अन्य तीनों वृतियों को सौहष्ठपूर्ण, वैचित्रययपूर्ण तथा सौन्दर्यात्मक बनाती है। स्वर–रूप में कैशिक की महत्वता का वर्णन किया गया है। भरत के अनुसार स्वर– साधारण दो प्रकार का होता है। एक के द्वारा अन्तर और काकली प्राप्त होते है और दूसरे के द्वारा साधारण गान्धार और कैशिक निषाद। दूसरे को 'कैशिक साधारण' की संज्ञा की दी गई है। कैशिक साधारण होने पर निषाद अपने स्थान से एक श्रुति चढ़ता है तथा षडज अपने स्थान से एक श्रुति उतरता है। एक श्रुति उतरा हुआ षड़ज च्युत षड़ज कहलाता है तथा एक श्रुति चढ़ा हुआ निषाद, 'कैशिक निषाद'। एक ही स्वर अन्य श्रुतियों के सर्म्पक में आने के पश्चात नाना प्रकार से अपना रंग रूप बदलता है। यह कैशिक अन्तर या तो मुख्य स्वर अपने पड़ोसी स्वर की श्रुति को स्पर्श कर कण के रूप में होता है या फिर स्वर अपनी ही श्रुति पर च्युत होने की अवस्था में होता है। विभिन्न काल खण्डों में नाद के इस सूक्ष्म रूप का व्यवहार वास्तव में चिंतन व ज्ञान का का मार्ग प्रशस्त्र करता है।

बीज शब्द

कैशिक, शास्त्रीय संगीत

भूमिका

कैशिक शब्द का सामान्य अर्थ है 'केशवत' अर्थात केश की तरह सूक्ष्म। ''वृहत हिन्दी कोश' के अनुसार केशिक का अर्थ, सुन्दर बालों वाला तथा कैशिक का अर्थ केश जैसा सूक्ष्म, प्रणय एवं श्रृंगार बताया गया है''।[1] कैशिक एक विशेषण है जिसका अर्थ केशों से युक्त या केश की तरह होता है। केश की विशेषता उसकी बारीकी होती है।

कैशिक का स्वर रूप

स्वर के रूप में कैशिक शब्द का प्रयोग प्राचीन काल से ही हो रहा है। इसका प्रयोग 'स्वर साधारण' के रूप में हुआ है। हम जानते है कि अपने स्थान में संक्रमित सुरीली ध्वनि 'अन्तर' है, उसका भाव 'साधारण'कहलाता है।'' जाति विभाग में साधारणय या सादृश्य होने से 'अन्तर' स्वर जिस प्रयोग में होता है, उसका भाव 'जाति साधारण' कहलाता है।''[2]

उदाहरण जैसे छांह में बैठने से ठण्ड लगती है तथा धूप में बैठने से पसीना आता है, अर्थात न ही बसंत आया है और न ही शिशिर काल समाप्त हो गया है। छांह में जाड़ा लगना बसंत की अपूर्णता और धूप में पसीना आना अपने स्थान से शिशिर का च्युत हो जाना है, अतः बसन्त और शिशिर के

मध्य का काल जिस प्रकार कालसाधारण है, इसी प्रकार दो स्वरों के अन्तराल में विद्यमान स्वर विशेष 'स्वर साधारण' कहलाता है।

''स्वर साधारणं काकल्यन्तरस्वरौ। तत्रद्विश्रुत्युत्कृष्टो निषाद काकलीसंज्ञो।।
भवति तद्वद् गान्धारोऽन्तरसंज्ञोभवति?[3]

अनुवाद : स्वरसाधारण में काकली और अन्तर स्वर साधारण है। दो श्रुति चढ़ा हुआ निषाद काकली निषाद होता है उसी प्रकार दो श्रुति चढ़ा गान्धार अन्तर स्वर नामक होता है।

नाट्यशास्त्र में स्वर साधारण दो प्रकार का बताया गया है यथाः

''तत्र द्वे साधारणे जाति साधारणं स्वर साधारण च।''[4]

नाट्यशास्त्र में कहा गया है–

''स्वर साधारणाम् दृिनिधं द्वेग्रामिक्यं, कस्मात साधारणोऽत्रस्वरविशेषः इति कृत्वा षड़जासाधारणमुच्यते एवं मध्यमेऽपि। अस्य तु प्रयोगसौक्ष्ममात् कैशिकमिति द्वितीय नाम निष्पद्यते''[5]

अर्थातः–

स्वरसाधारण दो प्रकार का होता है। 'साधारण' इस प्रसंग में विशिष्ट स्वर है, इसलिए षड़ज साधारण कहा जाता है। इसी प्रकार मध्यग्राम में भी मध्यम साधारण होता है, इस स्वर साधारण का तो यह 'कैशिक' है। इस प्रकार दूसरा नाम प्रयोग की सूक्ष्मता के कारण सम्पन्न हो जाता है। सारणा चतुष्टयी प्रक्रिया में सर्वप्रथम पंचम को एक श्रुति उतार कर षड़जग्रामिकी स्वर व्यवस्था भंग करके पुनः वीणा पर षड़ज ग्रामिकी स्वर व्यवस्था स्थापित करने के लिए षड़ज और मध्यम को एक विशेष रीति से उतारा जाता है, जिससे कि षड़ज त्रिश्रुतिक पंचम के साथ संवाद करें। ध्यान रहे उसे उसी अनुपात में उतारना है जिस अनुपात में पंचम को उतारा था। तभी वीणा पुनः षड़ज ग्रामिक बनेगी। इस प्रकार उतरे हुए षड़ज के साथ त्रिश्रुतिक पंचम का संवाद हो जाएगा तथा षड़जग्राम का जो मूल त्रिश्रुतिक ऋषभ है जिसका चतुश्रुतिक पंचम के साथ संवाद नहीं होता था, उसका उस त्रिश्रुतिक पंचम के साथ षड़ज–मध्यम भाव से संवाद बन जाएगा, यद्यपि षड़ज के एक श्रुति उतर जाने से षड़ज से उस ऋषभ का अन्तराल चतुश्रुतिक हो जाता है तथापि उसके स्थान में कोई च्युति नहीं आती। जैसे षड़ज के उतरने से ऋषभ चतुश्रुतिक हो जाता है, वैसे ही पंचम के उतरने से भी धैवत को पंचम की श्रुति मिल जाती है और वह चतुश्रुतिक हो जाता है, अब जैसे षड़ज–पंचम संवाद बनाने के लिए प्रथम सारणा में षड़ज को भी एक श्रुति उतारा जाता है तद्वत उस उतरे हुए षड़ज के साथ मध्यम का संवाद बनाने के लिए मध्यम को भी एक श्रुति उतरा जाता है और उस अवस्था में उतरा हुआ त्रिश्रुतिक पंचम, मध्यम की एक श्रुति मिल जाने से पुनः चतुश्रुतिक हो जाता है। ''प्रथम सारणा में सर्वप्रथम पंचम को एक श्रुति उतार कर षड़जग्रामिक स्वर व्यवस्था को भंग करके पुनः वीणा पर षड़जग्रामिकी स्वर व्यवस्था

स्थापित करने के लिए षड़ज और मध्यम का उपर्युक्त रीति से उतारने की जो क्रिया करनी पड़ती है उसी को शार्ङगदेव ने 'षड़ज साधारण और मध्यम साधारण' इन संज्ञाओं द्वारा अभिहित किया है।''[6]

काकली निषाद और अन्तर गान्धार के रूप में दो–दो श्रुतियों के उत्कर्ष से होने वाला साधारण बता चुकने के बाद यहां 'कैशिक साधारण' का वर्णन किया जा रहा है। इसे प्रयोग की सूक्ष्मता के कारण 'कैशिक' (केशाग्र अन्तरयुक्त) कहा जाता है। यह सुन्दरी के कटाक्ष की भान्ति चंचल होता है, स्थिर नहीं। षड़ज ग्राम में होने पर यह 'षड़ज साधारण' और मध्यम ग्राम में होने पर 'मध्यम साधारण' कहलाता है। जब षड़ज की आदिम श्रुति निषाद ले लेता है और अन्तिम श्रुति ऋषभ लेता है अर्थात निषाद त्रिश्रुतिक, ऋषभ चतुश्रुतिक हो जाता है तब साधारण होता है क्योंकि उस समय निषाद और ऋषभ क्रमशः षड़ज की आदिम और अन्तिम श्रुति लेकर षड़ज से उपकृत होते है। इस प्रकार जब गान्धार मध्यम की आदिम और मध्यम ग्रामीय पंचम, मध्यम की अन्तिम कैशिक श्रुति ले लेता है, तब मध्यम साधारण होता है।

षड़जसाधारण की अवस्था में निषाद 'कैशिक' तथा ऋषभ उत्कृष्ट कहलाता है, क्योंकि षड़ज की अन्तिम श्रुति मिल जाने पर उसके क्षेत्र में उत्कर्ष हो जाता है। इसी प्रकार मध्यमसाधारण होने पर गान्धार, साधारणगान्धार, मध्यम, च्युतमध्यम और मध्यमग्रामीय पंचम, उत्कृष्ट पंचम कहलाता है, क्योंकि मध्यम की अन्तिम श्रुति मिल जाने पर उसके क्षेत्र में वृद्धि हो जाती है।

इस प्रकार हम देखते है कि ऋषभ और धैवत के स्वस्थानस्थ रहने पर भी पूर्ववर्ती स्वर की अन्तिम श्रुति लेने पर उनके क्षेत्र में वृद्धि होती है, यही उसका उत्कर्ष है, यही विकार है।

षड़ज के दो भेद च्युत और अच्युत, मध्यम के दो भेद च्युत और अच्युत, पंचम के तीन भेद च्युत, अच्युत, उत्कृष्ट, ऋषभ के दो भेद त्रिश्रुतिक तथा उत्कृष्ट, गान्धार के तीन भेद द्विश्रुतिक, साधारण और अन्तर तथा निषाद के तीन भेद द्विश्रुतिक कैशिक और काकली। इस प्रकार इन स्वरों की संख्या 15 होती है।

''वैसे भरत ने दो प्रकार का स्वर साधारण कहा, एक वह जो अन्तर साधारण के नाम से जाना जाता है जिसके अन्तर्गत अन्तरगान्धार और काकली निषाद का ग्रहण होता है, दूसरा कैशिक साधारण जो प्रयोग सौक्ष्म्यवशात् व्यवहार में आ जाता है। इसके लिए भरत ने पृथक स्वर के रूप में व्यवस्था नहीं दी है। विपंची नवतंत्री होती थी और सप्त स्वर के अतिरिक्त उसमें अन्तर, काकली के लिए अन्य दो स्वरों का माना गया है। एक विशंति तंत्रीयुक्त वीणा (मतकोकिला) में भी कैशिक साधारण स्वरों का नियम वृतिकार अभिनवगुप्त ने भी बताया। प्रयोग की सूक्ष्मता के कारण यह स्वतः लगता था। भरत के पश्चात के काल 'याष्टिक' ने उत्कृष्ट (अपकृष्ट) पंचम या अन्य धैवत का जो वर्णन किया है वह भरत

के 'मध्यम साधारण' (कैशिक) की व्याख्यामात्र है क्योंकि मध्यम ग्राम में ही मध्यम साधारण का विधान है। इसी रूप में वह शार्ङ्गदेव का प्रतिपाद्य विषय रहा''।[7]

''वृद्ध कश्यप ने कहा है कि जातियों में इन 15 स्वरों का ही प्रयोग करना चाहिए।''[8]

उत्कृष्ट ऋषभ, उत्कृष्ट पंचम और उत्कृष्ट धैवत में स्थान विकृति न होने के कारण इनकी ध्वनि में परिवर्तन नहीं होता है यदि इन तीन को पूर्वोक्त 15 में से घटा दिया जाए तो संख्या 12 ही रह जाती है।

''षड़ज, मध्यम, पंचम की चतुश्रुतिकता ऋषभ धैवत की त्रिश्रुतिकता, गान्धार, निषाद की द्विश्रुतिकता इन स्वरों की 'पारमार्थिक' या 'प्राकृत' रूप का बोध कराती है। परन्तु स्वरों के पारस्परिक इष्ट या अनिष्ट सम्बन्ध प्रयोग के समय उनमें 'प्रकृति' या विकृत के कारण होते है। इसलिए महाभारत के अनुशासन पर्व में अनुगीता पर्व के अन्तर्गत प्रविभागवान् (ग्राम विभाग युक्त) शब्द के दशविध प्रकार में सातों स्वरो को गिना कर इष्ट, अनिष्ट और संहत भी गिनाए है।''[9]

दो, पांच, आठ या दस श्रुतियों का अन्तर अनिष्ट है। षड़ज और द्विश्रुतिक गान्धार में परस्पर पंचश्रुतिक अन्तर है, अतः षड़ज से जब सीधे द्विश्रुतिक गान्धार पर जाया जाएगा, तब गान्धार स्वतः एक 'कैशिक' श्रुति चढ़ जाएगा, परिणामतः षड़ज के पश्चात गान्धार इष्टषटश्रुति अन्तर पर लगेगा। इसी प्रकार पंचम के पश्चात प्रयुक्त द्विश्रुतिक निषाद, एक 'कैशिक' श्रुति पर चढ़ जाएगा और पंचम से षटश्रुति अन्तर पर चला जाएगा। पंचश्रुति अन्तर एक प्रकार का विवाद है।

''यदि द्विश्रुतिक गान्धार के पश्चात ऋषभ का प्रयोग करना हो तो भी गान्धार की आयत (चढ़ी हुई) अवस्था में होगी, यदि द्विश्रुतिक गान्धार के पश्चात मध्यम का प्रयोग करना हो, तो गान्धार की मृदु अवस्था होगी, यही स्थिति द्विश्रुतिक निषाद की है, धैवत से पूर्व प्रयुक्त होने पर निषाद आयत, षड़ज से पूर्व प्रयुक्त होने पर मृदु होगा। द्विश्रुतिक स्वर से पूर्ववर्ती स्वर की अन्तिम श्रुति 'कैशिकी', परिवर्ती स्वर की आदिम श्रुति भी 'कैशिकी' और द्विश्रुतिक स्वर की अपनी अन्तिम श्रुति भी 'कैशिकी' है। इसलिए द्विश्रुतिक स्वरों को पूर्ववती स्वर के क्षेत्र में एक कैशिकी श्रुति उतरने अथवा परवर्ती स्वर की एक आदिम कैशिक श्रुति का ग्रहण में आयास नहीं होता। द्विश्रुतिक स्वरो का झुकाव दोनों दिशाओं में होता है स्पष्ट है कि मृदु का आयात स्थिर नहीं सापेक्ष है।''[10]

कैशिक निषाद और च्युत षड़ज

आचार्य बृहस्पति के अनुसारः–

(क) ''जब निषाद प्रयोग की सूक्ष्मता के कारण एक प्रमाण श्रुति चढ़ता है तब 'कैशिक निषाद' कहलाता है और षड़ज ऐसी अवस्था में एक प्रमाण श्रुति उतरकर च्युत षड़ज कहलाने लगता है, यह प्रयोग षडज़ साधारण कहलाता है, यह षड़जग्रामीय 'षड़ज कैशिकी' जाति में होता है इस प्रयोग की भी स्थिर अवस्था नहीं है।

(ख) ऋषभ और धैवत उस अवस्था में चतुश्रुति या उत्कृष्ट कहलातें है, जब उनका पूर्ववर्ती स्वर एक प्रमाणश्रुति उतर जाता है। मध्यम ग्रामीय पंचम भी उस अवस्था में उत्कृष्ट कहलाता है, जब उसका पूर्ववर्ती स्वर एक प्रमाण श्रुति उतर जाता है।''[11]

सेर्वट सिद्धान्त

सेवर्ट सिद्धान्त के द्वारा स्पष्टीकरण करते हुए आचार्य बृहस्पति कहते है कि यदि 'सा' के पश्चात सां की दूरी को 301 समान घटकों में बांट दिया जाए तो महति श्रुति का परिमाण 23 घटक, उपमहति श्रुति का परिमाण 18 घटक और प्रमाण श्रुति का परिमाण 5 घटक है।

''षड़ज, मध्यम और पंचम अपने पूर्ववर्ती स्वरों की अपेक्षा 51 (518235=51) घटक ऊंचे है। इस उंचाई में श्रुति क्रम प्रमाणश्रुति, उपमहति श्रुति और प्रमाण श्रुति है। ऋषभ और धैवत अपने पूववर्ती स्वरों की अपेक्षा 46 (18235=46) घटक उंचे है। इस ऊंचाई में श्रुति क्रम उपमहति, महति और प्रमाण श्रुति है। गान्धार निषाद अपने पूववर्ती स्वरों में 28 (235=28) घटक उंचे है।[12]

कैशिक स्वर–मण्डल–प्रस्तार

''ऋषभ, धैवत और मध्यम ग्रामीय पंचम की उत्कृष्टता स्वर के द्वारा छोड़ी हुई श्रुति का ग्रहण करने से होती है, उस अवस्था में ये उत्कृष्ट स्वर अपने स्थान पर स्थिर रह कर ही चतुश्रुतिक हो जाते है इन में से प्रत्येक का परिमाण 51 घटक होता है।

च्युत षड़ज के प्रयोग की अवस्था में ऋषभ उससे 51 (518235=51) के अन्तर पर होता है उत्कृष्ट ऋषभ कहलाता है।''[13]

इसी प्रकार मध्यम ग्रामीय पंचम के पश्चात धैवत 51 (518235=51) घटक ऊंचा होता है और उत्कृष्ट धैवत कहलाता है।

''च्युत मध्यम के प्रयोग की अवस्था में मध्यम ग्रामीय पंचम अपने स्थान पर रहकर ही उत्कृष्ट पंचम कहलाता है और चतुश्रुतिक हो जाता है, क्योंकि वह च्युत पंचम के पश्चात 51 (551823=51) घटक के अन्तर पर होता है। इस प्रकार ऋषभ, धैवत और पंचम की उत्कृष्टता का कारण उनका अपने स्थान

से चढ़ना नहीं, अपितु अवरोह की ओर उनके अन्तराल, क्षेत्र या परिमाण में पांच घटक या एक प्रमाण की वृद्धि होती है।''[14]

इसी प्रमाणश्रुति (कैशिक अन्तर) के विषय में पं ओमकारनाथ ठाकुर कहते है ''षड़ज–पंचम भाव से स्वरों का जो चक्र चलता है उसे Cycle of fifths कहते है यह चक्र सतत् चलता ही रहता है। उसका कभी भी अन्त नहीं होता है। सा से प, प से रे, रे से ध, ध से ग, ग से नि, नि से तीव्र म२, तीव्र म२ से रे, रे से ध, ध, से, ग, ग से, नि, नि से शुद्ध म और शुद्ध म से सा। इस प्रकार षड़ज से आरम्भ हुआ चक्र अन्तिम षड़ज पर पूर्ण होना चाहिए परन्तु ऐसा नहीं होता आरम्भ के षड़ज से वह अन्तिम नाद का षड़ज एक श्रुति ऊंचा रहता है। इसी अन्तर को कोमा या प्रमाण श्रुति कहते है जिसके कारण यह चक्र पूर्ण नहीं होता, पुनः उस एक श्रुति उंचे षड़ज से आरम्भ किया हुआ चक्र भी उसी प्रकार पूर्ण नहीं होता।''[15]

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि षड़ज साधारण में कैशिक निषाद अपने शुद्ध स्थान से एक परिमाण श्रुति चढ़ा है और षड़ज अपने एक परिमाण श्रुति उतरा हुआ है ये परिमाण श्रुति अन्तर ही 'केशाग्र' अर्थात कैशिकी अन्तर है।

इसी तरह मध्यम साधारण में भी साधारण गान्धार शुद्ध अवस्था से एक परिमाण श्रुति चढ़ा हुआ तथा मध्यम अपनी मूल स्थिति से एक परिमाण श्रुति उतरा हुआ है, अतः इन स्वरो में भी कैशिक अन्तर है। षड़ज साधारण और मध्यम साधारण अवस्थाओं में स्वरों को अपने स्थान का अपने स्थान पर एक परिमाण श्रुति हटना प्रयोग (गायन, वादन) की सूक्ष्मता का परिणाम है। इसी प्रयोग सूक्ष्मता के कारण इसे 'कैशिक' नाम दिया गया है।

कैशिक स्वरों का प्रयोग कैशिकी एवं षड़ज कैशिकी जाति में बताया गया है।

''यत्कैश्चिदेते सम्प्रोक्ते कैशिके सूक्ष्मदृष्टिभिः साधारणेन तद्राजराजसम्मतिमर्हति।।
यतोऽभिनवगुप्तोक्तिरहसयज्ञो क्षमाद्विपः। अन्ययैतद्वचोगुम्फयुक्तिव्याकरणं व्यधात्।।
कैशिकीषड़जकैशिक्यौ यतस्तत्वज्ञसम्मते एते कैशिकमाश्रित्य प्रवृते – – –।
क्षेत्रराजमतादेस्वरसाधारण स्फुटम्''[16]

भावार्थः–

कैशिक स्वरों (षड़ज साधारण–मध्यम) का उपयोग षड़ज कैशिकी एवं कैशिकी जाति में क्रमशः होता है। षड़ज कैशिकी षड़जग्रामीय जाति है अतः उसमें षड़ज साधारण का प्रयोग होता है और कैशिकी जाति मध्यम ग्रामीय है और उसमें मध्यम साधारण का प्रयोग होता है।

''कैशिक स्वरों की प्रयोगजन्य अवस्था को देखते हुए ही मूर्च्छना विधान में कैशिक स्वर युक्त मूर्च्छाएं नहीं मानी गई है, अपितु अन्तर एवं काकली में उनका अन्तर्भाव मान लिया गया है।''[17]

''मतंग ने तो संक्षेप में साधारणीकृता मूर्च्छना के निरूपणावसर में स्वरसाधारण में केवल काकली–अन्तर की संज्ञा का उल्लेख किया है। साधारण के अन्य भेदों (षड़ज–मध्यम साधारणकाल में होने वाले) का अन्तर्भाव उन दो स्वरो में कर लेना इनका अभिप्राय रहा है''[18]

''जब स्वर अपनी स्थिति से चढ़ा है, परन्तु अपने आगे स्वर तक भी नही पहुंच पाया तो वह स्थिति 'साधारण' कहलाती है क्योंकि उस समय न वह स्वश्रुति में रहता है, न ही पर स्वर की अवस्था को प्राप्त करता है अर्थात पूर्व स्थिति का जहां पूर्णतया अन्त न हो और पर स्थिति को भी जहां आनागत न कहा जा सके वह स्थिति साधारण है। अभिनव गुप्त के शब्दों में स्वर के स्वस्थान से च्युत होने पर एवं परस्थान का ग्रहण कर लेने पर भी जो अपना स्क्तत्व नही खोता है, न विस्वर (बेसुरा एवं अपनी स्वर संज्ञा का खोना) होता है, स्वर का वह भाव 'साधारण' कहलाता है।''[19]

संदर्भ–सूची

1. बृहत हिन्दी कोश, संपादक कालिका प्रसाद, पृ. 314
2. नाट्य शास्त्र भरतमुनि (28स्वराध्याय, आ. बृहस्पति), पृ. 73
3. नाट्य शास्त्र भरत मुनि (28वां स्वराध्याय, आ. बृहस्पति), पृ. 73
4. नाट्य शास्त्र, भरत मुनि, अध्याय 28, पृ. 74
5. प्रणव भारती–प्रथम वीणा, पं. ओमकार नाथ ठाकुर, पृ. 120
6. प्रणव भारती, पं. ओमकार नाथ ठाकुर, पृ. 120
7. स्वर और रागों के विकास में वाद्यों का योगदान, डॉ. इन्द्राणी चक्रवती, पृ. 322
8. नाट्य शास्त्र, भरतमुनि (आ. बृहस्पति), पृ. 80
9. नाट्य शास्त्र, भरतमुनि (आ. बृहस्पति), पृ. 81
10. नाट्य शास्त्र, भरतमुनि (आ. बृहस्पति), पृ. 82
11. संगीत चिंतामणि, आ. कैलाश चन्द्र बृहस्पति, पृ. 139
12. संगीत चिन्तामणि, आ. कैलाश चन्द्र देव, बृहस्पति पृ. 139
13. संगीत चिन्तामणि, आ. कैलाश चन्द्र देव बृहस्पति, पृ. 142
14. संगीत चिन्तामणि, आ. कैलाश चन्द्र देव बृहस्पति, पृ. 142
15. प्रणव भारती, पं. ओमकार नाथ ठाकुर, पृ. 42
16. भरत का संगीत सिद्धांत, आ. केलाश चन्द्र देव बृहस्पति, पृ. 195
17. भरत का संगीत सिद्धांत, आ. केलाश चन्द्र देव बृहस्पति, पृ. 196
18. स्वर और रोगों के विकास में वाद्यों का योगदान, डॉ. इन्द्राणी चक्रवती, पृ. 228
19. स्वर और रोगों के विकास में वाद्यों का योगदान, डॉ. इन्द्राणी चक्रवती, पृ. 228